वीर संवत २४९२, ज्येष्ठ कृष्ण ४, मंगलवार, दिनाङ्क ०७-०६-१९६६
गाथा ४ से ६ प्रवचन नं. २

यह योगसार चलता है। योगीन्द्रदेव एक आचार्य दिगम्बर मुनि हुए हैं। उन्होंने इस 'योगसार' (अर्थात्) आत्मा के स्वभाव का व्यापार कैसे करना? और यह कैसे भूला है? – इसमें अधिकार (कहते हैं)। भूला है – यह भी खोटा भाव है न? यह योगसार है। स्वरूप में कैसे रमना? परन्तु यह किसके लिए कहते हैं? एक तो चार गति के भव के भय से दु:खी हुआ हो। चार गति के दु:ख से डर लगा हो और जिसे मोक्ष की लालसा, अभिलाषा हो, उसके लिए यह योगसार है। यह इसकी पहली शर्त है।

मुमुक्षु – देवगति में तो लाभ है न?

उत्तर – देवगति में धूल में भी लाभ नहीं है। देवगति में क्या लाभ है? है? देवगति में लाभ है? दु:ख है, दु:ख। वहाँ चार गति का दु:ख कहा है। श्वेताम्बर में एक ऐसा दृष्टान्त आता है कि 'लावो देवमयीभवी' – उत्तराध्ययन में (आता है)। देवगति का मनुष्यपना प्राप्त किया था, उसमें से मनुष्यपना प्राप्त करे तो मूल से पूँजी रही। मनुष्यपने में नारकी में जाए तो पूँजी खोई। देव होवे तो लाभ हुआ। सुना है? आता है। यह धूल में भी लाभ नहीं है।

यहाँ तो पहले से चार गति में परिभ्रमण करना जो दु:ख है और जिसे चार गति के दु:ख का भय लगा है; स्वर्ग में उत्पन्न होना भी भय है, दु:ख है, आकुलता है; वहाँ कहीं शान्ति नहीं है। समझ में आया? इससे कहते हैं। वह उत्तराध्ययन में आता है, भाई! व्यापारी का दृष्टान्त दिया है। दस हजार की पूँजी हो और दस हजार को संभाले तो मूल से पूँजी रही; खोवे तो गई; बढ़ावे तो पूँजी बढ़ाई। इस प्रकार मनुष्यपना प्राप्त करके मनुश्रूपना होवे तो पूँजी बराबर रखी; मनुष्यपना (पाये पीछे) नरक में जाए तो पूँजी खोई

और मनुष्यपना मरकर 'देव होवे तो' यह याद आ गया अभी। उसमें ऐसा है। देव पाये तो लाभ पाया। धूल में पाया। समझ में आया? देव में लाभ कहाँ? यहाँ तो चार गति का पाना ही दु:ख और अलाभ है। आहा...हा...!

प्रश्न - उसकी अपेक्षा तो ठीक है न?

उत्तर - जरा भी अच्छा नहीं है। उसकी अपेक्षा अच्छा क्या धूल होगा? चारों गतियाँ भट्टी (हैं) यह आकुलता के दु:ख से भट्टी जलती है। है? सच्चा होगा? तुम्हें कहाँ उसका अनुभव है? इसलिए इतनी बात की है कि जिसे भय (लगा है - ऐसा) तीसरी गाथा में आया था।

संसारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसियाहँ।
अप्पा-संबोहण-कयइ, दोहा एक्कमणाहँ ॥३॥

जिसे आत्मा को चार गति में भटकने का त्रास लगा है और जिसे आत्मा की मोक्षदशा की ही अभिलाषा और लालसा है, उसके लिए मैं यह एक मन से, एकाग्र होकर यह योगसार शास्त्र, दोहा कहता हूँ - ऐसा कहते हैं। अब, लिया देखो! संसार का पहला कारण।

☆ ★ ☆

संसार का कारण : मिथ्यादर्शन

कालु अणाइ अणाइ जिउ, भव-सायरु जि अणंतु।
मिच्छा-दंसण-मोहियउ, णवि सुह दुक्ख जि पत्तु॥४॥

जीव काल संसार यह, कहे अनादि अनन्त।
मिथ्यामति मोहित दु:खी, सुख नहिं कभी लहन्त॥

अन्वयार्थ - **(कालू अणाइ)** काल अनादि है **(जिउ अणाइ)** संसारी जीव अनादि है, **(भव सायरु जि अणंतु)** संसारसागर भी अनादि अनन्त है, **(मिच्छादंसणमोहियउ)** मिथ्यादर्शन कर्म के कारण मोही होता हुआ जीव **(सुह ण वि दुक्ख जि पत्तु)** सुख नहीं पाता है, दु:ख ही पाता है।

☆ ★ ☆

मिथ्यादर्शन संसार का कारण है। इसमें कर्म खोलेंगे। यहाँ कर्म की जरूरत नहीं है, तो भी अर्थ करेंगे।

कालु अणाइ अणाइ जिउ, भव-सायरु जि अणंतु।
मिच्छा-दंसण-मोहियउ, णवि सुह दुक्ख जि पत्तु॥४॥

काल अनादि है.... अनादि का काल है। किसी समय काल की आदि है? जब पूछो तब काल अनादि है। वर्तमान, भूत और भविष्य - ऐसा अनादि काल चला आता है। अनादि का काल है। आचार्य, तीन साथ में लेते हैं। अनादि काल, जीव अनादि। संसार में भटकनेवाले जीव भी अनादि हैं। निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक, चार गतियों में भटकनेवाले दुःखी, दुःखी, दुःखी हैं। एक थोड़ी-सी प्रतिकूलता आती है वहाँ चिल्लाता है। एक जरा-सी अनुकूलता आवे, वहाँ हर्ष का सबड़का मानता है। मानता है, सबड़का मानता है। धूल में भी नहीं है। दुःखी... दुःखी... दुःखी है। जरा कोई पाँच-पचास लाख मिले, अभी तो पाँच-पचास लाख में भी सुख नहीं होता।

मुमुक्षु - रुपये की कीमत घट गयी है।

उत्तर - कीमत घट गयी, कोई रास्ते में कहा था कि रुपया घट गया। कोई कहता था, हैं? रुपये का भाव घट गया - ऐसा कहता था कोई। क्या कहता था, नहीं? सवेरे। रुपया का भाव घट गया, कहता था। छत्तीस, घट गया - ऐसा कुछ होगा। अपने को कुछ पता नहीं पड़ता। रुपये का भाव (क्या)? रुपया तो है वह है। कल्पना में घालमेल किया - ऐसा कुछ आया है या नहीं? तुम्हें तो सब पता होता है।

काल अनादि और संसारिक जीव भी अनादि। संसारी जीव अनादि। इसमें यह सिद्ध करना है न? उसमें से सिद्धपने का उपदेश देना है। संसारी जीव भी अनादि के परिभ्रमण करते हैं। कभी संसार नहीं था और जीव को संसार नया हुआ है। ऐसा है नहीं। कल कोई प्रश्न करता था, भाई! है? यह अशुद्धता आयी कहाँ से? यह संसार आया कहाँ से? संसार पर्याय में अशुद्धता अनादि की है। फिर दोनों बाहर बातें करते थे। मैं अन्दर सुनता था, उस सोने के पत्थर की.... सोना और पत्थर दोनों इकट्ठे हुए।

यह तो अनादि का आत्मा है, समझ में आया ? और यह आत्मा सत्तारूप से अनादि और उसकी पर्याय भी अनादि की है, मलिन पर्याय अनादि की है। समझ में आया ? गन्ने का रस और छिलका दोनों इकट्ठे हैं। पहले छिलका नहीं था और रस के साथ छिलका लगा, ऐसा है ? सेरड़ी - गन्ना... समझ में आता है ? इसी प्रकार खान में सोना और पत्थर दोनों साथ ही है। पहले सोना था और फिर पत्थर लगा, ऐसा है नहीं। इसी प्रकार दूध में पानी और दूध दोनों दूहने में इकट्ठे होते हैं। पानी बाद में दूध में आया ऐसा नहीं है, हाँ! दूसरे डाल दें वह नहीं, अन्दर पानी होता ही है। जब उबलते हैं तब मावा होकर पानी उड़ जाता है। पानी और दूध का भाग दोनों इकट्ठे ही हैं। इसी प्रकार तल तिल और तेल, खल और तेल, तिल में होती है न खल ? खल और तेल... पहले, बाद में किसे कहना ? खल... खल। खल अर्थात् ***कूंचा*** और तेल दोनों साथ ही हैं। भिन्न करो तो हो सकते हैं। इसी प्रकार जीव अनादि है। चकमक में अग्नि अनादि है। चकमक में अग्नि और चकमक दोनों अनादि के साथ हैं। समझ में आया ?

इसी प्रकार संसार की अशुद्ध मलिनदशा, ...जो आत्मा शुद्ध द्रव्यरूप अनादि से है.... 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन' ध्रुव द्रव्य ध्रुवरूप से अनादि है और उसकी पर्याय मलिन वह अनादि की है, पहले निर्मल थी और बाद में मलिन हुई - ऐसा है नहीं, ऐसा होता नहीं। कच्चे चने को सेंके तो उगते नहीं परन्तु जहाँ तक कच्चा है वहाँ तक उगता है। यह चने की कच्चेपन की दशा पहले से ही है। समझ में आया ? यह चना होता है न ? चना, पहले से ही वह कच्चा है। ऐसा नहीं है कि पहले सिंका हुआ था और फिर कच्चापन लगा - ऐसा नहीं है। इसी प्रकार आत्मा संसार की विकारी दशावाला, वस्तु से तो शुद्ध चिदानन्द, सद्चिदानन्दस्वरूप है, तथापि इस पर्याय में विकार कैसे आया ? (यह) बड़े-बड़े त्यागियों को भी शंका थी, बहुतों को शंका है, लो न! आया इसमें। देखो! समझ में आया ? ऐ...ई...! कर्म के कारण मलिन, कर्म के कारण मलिन - ऐसा भी नहीं है। समझ में आया ?

यह जीव अनादि, संसारी मलिन दशा है, मलिनता न हो तो इसे आनन्द का अनुभव चाहिए और आनन्द अन्दर न हो तो आनन्द आयेगा कहाँ से ? यदि अन्दर में आनन्द न हो तो आनन्द प्राप्त कहाँ से होगा ? और मलिनता ही न हो, तब तो इसे पुरुषार्थ करना,

समझना, श्रद्धा करना यह कुछ नहीं रहता। शास्त्र क्या, उसे समझना कुछ नहीं रहता। समझ में आया? इसलिए **संसारी जीव अनादि है।** दो बातें (की)।

तीसरा **भव सायरुजि अणतुं** चौरासी के अवतार भी अनादि के हैं। कोई पहला अवतार है – ऐसा है नहीं। नरक में अनन्त बार गया, स्वर्ग में अनन्त बार गया, निगोद में अनन्त भव किये – पशु में अनन्त बार गया; मनुष्य अनन्त बार हुआ। यह भवसागर महा गहरा अनादि का है – ऐसा कहते हैं। काल अनादि, भगवान जीव भूला हुआ अनादि... 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया।' स्वयं ही स्वयं को अनादि से भूला हुआ है क्योंकि इसकी दृष्टि इन्द्रिय ऊपर है। भगवान अन्दर कौन है? इसका उसे पता नहीं है। उसका माहात्म्य नहीं है, इसलिए कर्मजन्य उपाधि, उसके लक्ष्य से उसके अस्तित्व में अपना अस्तित्व स्वीकार किया है। इस प्रकार स्वयं सत्ता भिन्न आनन्दकन्द है – ऐसी स्वसत्ता की अन्तर्मुखदृष्टि नहीं है। बहिर्मुखदृष्टि में इन्द्रियाँ, अल्पज्ञान, राग-द्वेष आदि का अस्तित्व दिखाई देता है। समझ में आया? वह संसार है।

संसार सागर भी अनादि अनन्त है... लो, समझ में आया? अनादि अनन्त है। भव सागर अनादि है, इतना। समझ में आया? संसार अनादि है। यहाँ तीन लेना है। अनादि लेना है, भविष्य की बात नहीं लेना... भव सागर भी अनादि का है। अब कैसे अनादि का और कैसे संसार है? काल अनादि, जीव अनादि, भव सागर भी अनादि। वह है कैसे इस भव सागर का भटकना? उसका सिद्धान्त सिद्ध करते हैं।

मिच्छादंसण मोहियउ लो! मिथ्याश्रद्धा से मोहित होता हुआ... यह सिद्धान्त है अकेला। कर्म-फर्म के कारण नहीं, हाँ! मिथ्याश्रद्धा से मोहित, भगवान आत्मा के आनन्दस्वभाव को भूला हुआ और पुण्य और पाप के भाव, शरीरादिक की क्रिया, उसका अस्तित्व ऐसा देखता है। अन्दर में पूर्ण अस्तित्व है, उसका इसे पता नहीं है; पता नहीं है इसी का नाम मिथ्यात्व है। अज्ञान, मिथ्यात्व, एकान्त मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व – ऐसे मिथ्यात्वों से अनादि काल से मोहित है। मिथ्याश्रद्धा में विमोहित है, उसमें इसे रुचि है, उसमें इसकी प्रीति है। जगत की कर्मजन्य उपाधि के संयोग में इसकी लगन लगी है, मिथ्यादर्शन के मोह के कारण... समझ में आया? जिसमें सुख नहीं है, उसमें सुख मानता

है; जिसमें दु:ख है, उसमें सुख मानता है; दु:ख है, उसे सुख मानता है। यह भाव इसे क्यों है ? मिथ्यादर्शन के कारण मोहित हुआ। समझ में आया ? विपरीत श्रद्धा की। भगवान आत्मा पूर्णानन्द (स्वरूप है)।

'उपजे मोह विकल्प से' आता है न, श्रीमद् में ? 'उपजे मोह विकल्प से, समस्त यह संसार, उपजे मोह विकल्प से'। वहाँ कर्म-फर्म की बात नहीं है। पर में सावधानी, राग में पुण्य में उसके फल में, इस मिट्टी में, इन्द्रियों में, शरीर में, उसकी अवस्था में, बाहर की सुविधाओं में, असुविधाओं में इसमें मुझे यह दु:ख और मुझे यह सुख - ऐसी कल्पना, वह मिथ्यादर्शन है। समझ में आया ? 'उपजे मोह विकल्प से' स्वरूप के भान बिना पर की सावधानी की मिथ्याश्रद्धा से 'उपजे मोह विकल्प से, समस्त यह संसार'। यह सारा संसार विकार में उत्पन्न होता है।

'अन्तर्मुख अवलोकते' परन्तु भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है, सच्चिदानन्द प्रभु है, ऐसे 'अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं वार'। संसार का व्यय होकर मुक्ति का उत्पाद होवे, उसमें इसे देर नहीं लगती परन्तु इस मिथ्यादर्शन के कारण अनादि से मोहित है। आहा...हा... ! एक जरा सी सुविधा मिले वहाँ तो ऐसा मानो... आहा...हा... ! पच्चीस (रुपये) का वेतन हो और तीस (होकर) पाँच बढ़े, वहाँ तो इसे घर में हर्ष होता है, लो ! पाँच बढ़े वहाँ (ऐसा कहता है) आज लापसी करो, लो ! महीने में पाँच बढ़े, बारह महीने में साठ बढ़े... हैं ? और जहाँ इससे कुछ और पाँच घटे और कुछ गुनाह हुआ... जाओ... ! हाय...हाय... ! समझ में आया ? मोह के कारण, व्यर्थ का... बाहर में घटा-बढ़ा वह कहाँ तेरे आत्मा को छूता है ? परन्तु कल्पना से बड़ा और कल्पना से घटा... अज्ञानी ऐसा मानता है। लड़का हुआ, लड़का अब हमारा वंश रहा, हमारे धूल रही, तेरा वंश वहाँ कहाँ से रहा ? तू यहाँ और वहाँ वंश कहाँ से आया ? समझ में आया ? कुछ दुकान बढ़िया चली (तो).... आहा...हा... ! अब हम बढ़े, हाँ ! हरिभाई !

'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये' - सोलह वर्ष में पुकार करते हैं, हाँ ! 'परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि नय पर तौलिये'.... अरे ! मिथ्या मोह के कारण यह बढ़ा, मेरा वेतन बढ़ा, मेरा वेतन। तेरा वेतन अर्थात् क्या ? आत्मा का वेतन बढ़ा ?

दो हजार के पाँच हजार हुए, हैं ? पहले साधारण व्यापार करते थे, उसमें पाँच हजार की आमदनी थी। अभी तो पचास-पचास हजार की आमदनी हो गयी। अभी बहुत बादशाही है। मूढ़ है न ? परन्तु मूर्ख !

किसकी ? होली सुलगती है वहाँ। कषाय और मोह वह मिथ्याश्रद्धा से इस मान्यता में सब संसार खड़ा किया, वहाँ कहाँ सुख और दुःख था ? ओ...हो... ! कैसे होगा ? धीरुभाई ! हैं, कान्तिभाई ! पाँच सौ-पाँच सौ का वेतन हो, अकेला हो, लो ! तो वह कितना अधिक अनुकूल लगेगा, सब व्यवस्था (होवे) आहा...हा... ! धूल में भी नहीं। विपरीत मान्यता से मोहित यह पर में सुविधा-असुविधा अज्ञानी मान रहा है। कहो, बाबूभाई ! क्या होगा यह ? लो, शब्द क्या है ? एक तो काल अनादि, संसार अनादि, भवसागर अनादि। संसारी (अर्थात्) जीव अनादि, ऐसा।

मुमुक्षु - अनन्त लिखा है। भवसागर अनन्त....

उत्तर - यह भव सागर अनन्त है न अनादि का ? अनन्त संसार है। अनादि का अनन्त है। आहा...हा... ! कहीं अन्त है ? चौरासी के अवतार में कहाँ इसका अन्त है ? अनन्त भव... अनन्त भव... अनन्त भव... अनन्त-अनन्त भव। उसमें मिथ्यादर्शन से मोहित है, वर्तमान बात करते हैं। जहाँ-जहाँ तू है, वहाँ तेरी विपरीत श्रद्धा से मोहित है। यह महान संसार का मूल कारण पहले लिया है। समझ में आया ? सात व्यसन से भी यह पाप बड़ा है, यह बाहर के इन्द्रिय संयम और बाहर का त्याग करे परन्तु अन्दर में जिसे अभी दया-दान के भाव हुए, मुझे धर्म है, उनसे धर्म होगा (-ऐसे) मिथ्यादर्शन में मोहित प्राणी अनादि का अज्ञानी है। समझ में आया ? आहा...हा... !

बाहर का जरा त्याग हुआ और संयम लिया ऐसा माना। कहाँ संयम था ? आत्मा के भान बिना, सम्यग्दर्शन और अनुभव के बिना जो चैतन्यमूर्ति आनन्द है, उसका तो अन्दर में भान नहीं और यह दया-दान-व्रत-भक्ति और क्रियाकाण्ड यह सब तो राग है। इस राग का विवेक सम्यग्दर्शन से होता है, मिथ्यादर्शन में इसका अविवेक रहता है, विपरीत श्रद्धा के कारण उसका अत्याग रहता है।

मुमुक्षु - किसका ?

उत्तर – राग का। श्रद्धा में राग का अत्याग, वह मिथ्यादर्शन से मोहित, विकल्प की सूक्ष्मता, दया, दान, व्रतादि का जो अन्दर उठे, उसे मिथ्यादर्शन से मोहित प्राणी उसे स्वयं को लाभदायक मानता है। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु – पूरा जगत मानता है।

उत्तर – पूरा जगत उसमें पड़ा है। यह तो अनादि की बात करते हैं। साधु होकर बैठा... साधु किसे कहना ? आत्मा का भान तो अभी है नहीं। जिसमें अनादि उदय संसार, स्वभाव में नहीं, उसे एक समय का राग विकल्प मेरा है, लाभदायक माना है, वह महामिथ्यादर्शन से मोहित प्राणी है। समझ में आया ? उसका सब त्याग और बाहर का वैराग्य वह अज्ञान-पाड़ा खा जाता है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

एक ही बात ली है – **मिच्छादंसण मोहियउ** समझ में आया ? फिर सातवीं गाथा में कर्म नहीं डाला, देखा था, उन्होंने वहाँ क्या किया है ? सातवीं में आता है न ? वहाँ भी मिथ्यादर्शन आता है, हाँ! सातवें में कहीं आता है न ? सातवें में आता है, सात में। वहाँ भी **मिच्छादंसण मोहियउ** वहाँ मिथ्यादर्शन और मोही जीव इतना लिया है। मैंने कहा, वहाँ क्या लिया है ? पहले से डाल न ! भाई ! मूल कर्म बिना तो लोगों को चलता नहीं, हैं ! क्या कहा ?

मुमुक्षु – रट गया है।

उत्तर – रट गया है, भाई ! तेरा आत्मा उस राग के बिना रह सके ऐसा तत्त्व है। उसे तू रागसहित रह सकता हूँ, उसके बिना नहीं रह सकता, यह मिथ्यादर्शन से मोहित मूढ़ बहिरात्मा है। समझ में आया ? अथवा यह बहिर अर्थात् रागादि पुण्यभाव दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, उसके द्वारा मेरा निश्चय प्राप्त होगा, वह मिथ्यादर्शन से मोहित प्राणी राग का त्याग करना नहीं चाहता। समझ में आया ?

मिच्छादंसण मोहियउ मोहि होता हुआ.... सुह ण वि - सुख प्राप्त नहीं करता... लो ! यह सिद्धान्त। फिर शब्द वहाँ यह लिया है। मिथ्याश्रद्धा से मोहित प्राणी सुख को प्राप्त नहीं करता। सुख और दु:ख ऊपर ही शुरुआत की है क्योंकि दुनिया को सुख चाहिए है न ? मिथ्याश्रद्धा के कारण, वह गहरे-गहरे जिसे आत्मा के स्वभाव का पता

रहित पुण्य-पाप के भाव व्रत, भक्ति, जप, तप का भाव यह राग, मोह, विकार है। इस विकार में मोहित प्राणी इस ऐसे स्वभाव में सावधान नहीं होता है। मोही प्राणी सुख को प्राप्त नहीं करता, आत्मा की ओर नजर नहीं करता और यहाँ मोहित उस सुख को प्राप्त नहीं करता। तब क्या प्राप्त करता है ? दुःख। समझ में आया ?

अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसे इस राग और विकल्प में मोहित प्राणी, उनमें सावधान में एकाकार हुआ, आंशिक सुख को प्राप्त न करता हुआ दुःख को ही प्राप्त करता है। संसार के सुख-दुःख दोनों को यहाँ दुःख में गिनने में आया है। यह सुख जो कहा, वह आत्मा के सुख की बात कहने में आयी है। समझ में आया ? यह जो सुख कहा, वह संसार की बात नहीं है।

सुह ण वि कल दोपहर में आया था, वह सुन्दर सुख आया था या नहीं ? वह यहाँ बात नहीं है। आत्मा के सुख को (प्राप्त नहीं करता) क्योंकि अपना निज स्वरूप अखण्ड ज्ञायक शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, जिसमें राग के कण की मिलावट, मिलाप नहीं। मिलावट और मिलाप नहीं। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पंच महाव्रत के परिणाम का राग उसे और स्वभाव को मिलाप नहीं, तथापि अज्ञानी उसे अपना रूप, स्वरूप छोड़ने योग्य नहीं अर्थात् मुझसे भिन्न पड़ने योग्य नहीं - ऐसा मानकर मिथ्यादर्शन से अकेला दुःखी... दुःखी और दुःखी हो रहा है। जरा भी आत्मा के आनन्द के सम्यग्दर्शन के अन्तर्मुखता के सुख को मिथ्यादर्शन में प्राप्त नहीं करता। कहो समझ में आया ? चौथी गाथा (पूरी) हुई। अपने को तो यहाँ गाथा का सार-सार लेना है न ? पाँचवीं।

☆ ★ ☆

मोक्षसुख का कारण : आत्मध्यान

जइ बीहउ चउ-गइ-गमण, तो पर-भाव चएहि।
अप्पा झायहि णिम्मलउ, जिम सिव-सुक्ख लहेहि॥५॥

चार गति दुःख से डरे, तो तज सब परभाव।
शुद्धात्म चिन्तन करि, लो शिव सुख का भाव॥

अन्वयार्थ - **(जई)** यदि **(चउगइगमणु वीहउ)** चारों गतियों के भ्रमण से भयभीत है **(तो)** तो **(परभाव चएवि)** परभावों को छोड़ दे **(णिम्मलउ अप्पा झायहि)** निर्मल आत्मा का ध्यान कर **(जिम)** जिससे **(सिवसुक्ख लहेवि)** मोक्ष के सुख को तू पा सके।

☆ ★ ☆

अब, उसके सामने गुलांट खाता है, देखो! मिथ्यादर्शन से मोहित जीव चौरासी में भटकता है। समझ में आया? अन्तिम ग्रैवेयक, नौवें ग्रैवेयक (गया) 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पे निज आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायो' नौवें ग्रैवेयक में, दिगम्बर साधु पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, वह मूढ़ जीव है। अट्ठाईस मूलगुण वह राग है, उसमें हित मानता है। मिथ्याश्रद्धा से मोहित प्राणी मूढ़ है, उसे आत्मा के ज्ञान और आनन्द का पता नहीं है। ऐसे वह पालने से मरकर चार गति में भटकनेवाला है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसके सामने अब बात है, लो!

दुःख का कारण मिथ्यादर्शन कहा, उसमें जरा भी सुख नहीं है। उसमें - मिथ्याश्रद्धा में कहाँ से (होगा)? लोग मिथ्यादर्शन की व्याख्या ही संक्षिप्त करते हैं। समझ में आया? हम देव-शास्त्र-गुरु को मानते हैं, कुदेव-कुगुरु को नहीं मानते, हम पंच महाव्रत पालन करते हैं... परन्तु यह पंच महाव्रत राग है, वह मेरा है उन्हें पालन करूँ और (वे) रखने योग्य है, उस भाव को ही मिथ्यादर्शन कहा है। सुन न! उस जीव को मिथ्यादृष्टि कहा है, वह अज्ञानी है। भले दिगम्बर साधु त्यागी होकर बैठा हो परन्तु उसके पंच महाव्रत के... है तो कहाँ उसके पास? परन्तु ऐसा कोई दया, दान, राग की मन्दता का भाव मुझे हितकर है, मुझे लाभदायक है, वह मिथ्यादर्शन से मोहित है। जिसे मिथ्यादर्शन का जहर चढ़ा है। समझ में आया? उसे जरा भी आत्मा के अमृत का स्वाद नहीं होता।

मोक्षसुख का कारण : आत्मध्यान। देखो यह कहा, व्यवहार - भ्यवहार नहीं - ऐसा कहते हैं देखो!

जइ बीहउ चउ-गइ-गमण, तो पर-भाव चएहि।
अप्पा झायहि णिम्मलउ, जिम सिव-सुक्ख लहेहि॥५॥

ओ...हो... ! संसार में परिभ्रमण का कारण एक मिथ्यादर्शन भाव कहा, तब मुक्ति के उपाय के लिए एक आत्मध्यान कहा। बात गुलाँट खाती है, समझ में आया ? यह शुभ -अशुभविकल्प, राग यह बहिर चीज स्वरूप में नहीं है। इसे हितकर मानना ही मिथ्यादर्शन और मोह है। मिथ्यादर्शन में मोहित जीव है। जबकि आत्मा के मोक्ष का कारण, आत्मा के धर्म का कारण कौन ? कि **जो चारों गतियों के भ्रमण से भयभीत है...** फिर से लिया, चार गति... पहले समुच्चय बात थी। पहले भाषा में समुच्चय थी, यह चार गति स्पष्ट की। समझ में आया ? इतना था यह, समुच्चय था।

यहाँ चार गति का भय (कहकर) खुला कर दिया। जिसे स्वर्ग में अवतरना है... यह दया, दान, व्रत, भक्ति पालन कर... वह भी दुःखरूप है। चार गति में स्वर्ग में अवतरित होना, वह दुःखरूप है। कितने ही कहते हैं भाई ! अपने अभी पुण्य करो, व्रत पालो, स्वर्ग में जाऊँगा फिर भगवान के पास जाऊँगा... धूल में भी नहीं जा। यहाँ अभी तो आत्मा का अनादर करता जाता है, भगवान का निषेध करता है। भगवान ने कहा - तेरा आत्मा अन्दर आनन्द है इस क्रियाकाण्ड में - दया, दान, व्रत के परिणाम से तुझे आत्मा का हित नहीं है - ऐसा भगवान ने कहा, वह तो यहाँ मानता नहीं। समझ में आया ? इस प्रकार जिसे चार गति के दुःख का त्रास है, भय है, भय.... आहा...हा... !

चारों गतियों के भ्रमण से भयभीत है.... समझ में आया ? दूसरी एक बात आती है, उस बैल की। एक बैल था और उसे नाथ करने के लिए लुहार के यहाँ ले गये थे। दुःख तो बहुत होता है, उसमें बैल खो गया तो ढूँढ़ने के लिए लुहार के यहाँ आये। (वहाँ जाकर पूछते हैं), यहाँ नहीं ? (लुहार कहता है) परन्तु यहाँ नहीं आयेगा। तू कहाँ ढूंढ़ने आया ? किसी न किसी के खेत में देखने जा तो ठीक है, यहाँ नाथ के लिए आया था, वहाँ फिर से आयेगा ? नाथ करते हैं या नहीं ? पैर बाँधे हों, लोहे से ऐसा करके नाथ करते हैं। उसमें आठ-पन्द्रह दिन में बैल खो गया। यहाँ आया है ? परन्तु यहाँ नहीं आयेगा। यहाँ तो नाथ करे, वहाँ आता होगा ? इसी प्रकार चौरासी की गति में जिसे त्रास (लगा) है, वह फिर से गति में अवतरित नहीं होता। उसके लिए यह बात करते हैं, कहते हैं। समझ में आया ? तब क्या करना ?

....भयभीत हुआ हो तो परभावों को छोड़ दे। एक सिद्धान्त, बहुत संक्षिप्त, अत्यन्त संक्षिप्त। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, यह पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, तप और जप - यह सब राग परभाव है, परभाव है। इसे श्रद्धा में से छोड़! यहाँ से बात शुरु की है। समझ में आया? यदि चार गति से भय पाया हो (तो) **परभावों को छोड़ दे।** बहुत संक्षिप्त बात। यहाँ उसका अर्थ है कि जो लोग ऐसा कहते हैं न कि भाई! व्यवहार करते-करते निश्चय प्राप्त होगा.... यहाँ कहते हैं कि जो व्यवहार है, वह परभाव है, उसे छोड़ तो आत्मा प्राप्त होगा। आहा...हा...! समझ में आया?

यही पुकार करते हैं। व्यवहार करो... व्यवहार करो... भाई! पहले व्यवहार करो- दया पालो, संयम पालो, इन्द्रिय दमन करो। धूल में भी तेरा पालन राग है। सुन न!

मुमुक्षु - विभाव की ठीक से सम्हाल रखते हैं।

उत्तर - हाँ, सम्हाल रखो। विभाव की सम्हाल रखो (-ऐसा) उसका अर्थ हुआ या नहीं? समझ में आया या नहीं? वह कल भी कोई आया था, भाई! जयपुरवाला... वह कहता था कि अब गड़बड़ तो बाहर चली है। वह हमारे स्थानकवासी में बड़ा विद्वान है- गति... कैसा? गतिलाल, गतिलालजी पाटनी। वे यह आत्मधर्म पढ़ते हैं, स्थानकवासी हैं, बड़े से बड़ा पण्डित है, वह यह पढ़ता है कि निश्चय के बिना व्यवहार-फ्यवहार नहीं होता। पूरे साधु सब अभी ऐसा कहते हैं। अब निश्चय की बात करने लगे हैं। निश्चय से मुक्ति होती है, यह बात सत्य परन्तु व्यवहार के बिना नहीं होती - यह बात भी सत्य। इसलिए परभाव का अभाव करना - ऐसा नहीं। समझ में आया? व्यवहार अर्थात् परभाव। व्यवहार का अर्थ दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प उठता है, वह सब परभाव है। वह व्यवहार अर्थात् परभाव, उस परभाव के बिना नहीं चलता, निश्चय उसके बिना नहीं होता। (-ऐसा माननेवाले) मूढ़ है। यहाँ तो पहले से ही कहा है, देखो! क्या कहते हैं? आहा...हा...!

परभाव चहवि 'चहवि' अर्थात् छोड़ दे। तेरी दृष्टि में यह मिथ्यात्वभाव पड़ा है। यह परभाव हो, कुछ-कुछ राग की मन्दता हो, कषाय की मन्दता हो, तो अपने.... वह कहता था, अशुभ में से शुभ और शुभ में से शुद्ध (होंगे)। बातें तो चलने लगी हैं, (ऐसा

वह) कहता है। धूल में भी नहीं होता। शुभ को छोड़ तो लाभ होता है, शुभ में से शुद्धता होती है ऐसा नहीं। समझ में आया? यह क्या कहा? देखो! पढ़ो।

जइ वीहउ चउगइगमणु तउ परभाव चएवि। परभाव की व्याख्या क्या? जितना भगवान आत्मा ज्ञातादृष्टा का भण्डार है, उससे (विपरीत) जितना एक तीर्थंकर गोत्र जिस भाव से बाँधे, वह परभाव, परभाव, परभाव है। समझ में आया? यदि तुझे चार गति के दुःख का भय लगा हो तो परभाव को छोड़। **परभाव चहवि** छोड़ दे परभाव। यह परभाव माने तो न! सावद्ययोग प्रत्याख्यान, फिर ऐसा कहता था। सावद्ययोग का प्रत्याख्यान होता है। सुन न! शुभभाव के प्रत्याख्यान उस समय छूटता नहीं, इसलिए ऐसा करते हैं। दृष्टि में तो समस्त भाव का निषेध है। समझ में आया? सावद्ययोग के प्रत्याख्यान में अशुभ छूट जाता है और शुभ दृष्टि में से छूटता है परन्तु अस्थिरता में से नहीं छूटता, इतना सावद्ययोग का त्याग करता है। दृष्टि में से तो सब पाप और पुण्य परिणाम का त्याग है। अस्थिरता के नहीं छूटते इसलिए सावद्ययोग का इस प्रकार त्याग किया जाता है। **कर्मे हणं ते** सामायिक, सावद्ययोग और प्रत्याख्यान। उसे एक पत्र आया था न? एक पत्र आया था। सामायिक- महावीर की सामायिक का हम बहुत प्रचार करते हैं। कहा, महावीर की सामायिक को पहचानना तो पड़ेगा, सामायिक किसे कहना? यह बैठा ऐसा करके, णमो अरिहंताणं बोले वह सामायिक? मिथ्यादर्शन की बड़ी शल्य तो अन्दर पड़ी है।

मुमुक्षु - बोलता है....

उत्तर - बोले उसमें क्या? राग मुझे लाभदायक, यह शरीर मुझे है, इसका अर्थ यह हुआ। राग मुझे लाभदायक है (-ऐसा माननेवाला) इस शरीर को जीव मानता है। समझ में आया? एक कहता था, शरीर और जीव भिन्न है। अरे...! शरीर और जीव भिन्न का अर्थ - शरीर, कर्म, राग, पुण्य-पाप, यह सब शरीर है। भगवान आत्मा तो चिदानन्द ज्ञातास्वरूप है। राग के कण को भी अपना माने, वह बहिरआत्मा, शरीर को ही आत्मा मानता है। समझ में आया? क्योंकि राग का लक्ष्य जाएगा, शरीर की क्रिया पर और वह क्रिया होगी उसे मानेगा कि इसकी क्रिया कर सकता हूँ।

'**परभाव चहवि**' कहते हैं, यदि तुझे चार गति का डर लगा हो (तो) परभाव

छोड़। देखो! पहले त्याग की बात की... यह त्याग... किसका त्याग? इस शुभ-अशुभभाव का त्याग। घरबार कब आ गये थे तो उनका त्याग करे? घरबार तो उनके घर में बाहर ही पड़े हैं। यहाँ कहाँ अन्दर में आ गये हैं? यह (गति) थी, उसकी पर्याय में उसकी बात करते हैं। उसकी पर्याय में पर्यायरूप से पकड़ा हुआ परभाव, उसे द्रव्यदृष्टि से तू छोड़। आहा...हा...! समझ में आया? यह कहेंगे, देखो! छोड़कर फिर करना क्या? यहाँ तो अभी परभाव को छुड़ाकर पूरी लम्बी व्याख्या है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी परभाव है। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम परभाव है। छोड़! वह गति का कारण है, मोक्ष का कारण नहीं।

'**अप्पा झायहि णिम्मलउ**' अब तब करना क्या? यह तो नास्ति हुई। **निर्मल आत्मा का ध्यान कर....** लो! यह मोक्ष का मार्ग... भगवान आत्मा निर्मल... निर्मल क्यों लिया? कि दूसरी अशुद्ध पर्याय मलिन दिखती है न? उस अशुद्धता को छोड़ - ऐसा कहा। अशुद्ध जो विकारी पर्याय है, पुण्यादि, वह तो छोड़ने योग्य है। तब अब (कहते हैं) आत्मा का ध्यान (कर)! परन्तु आत्मा कैसा है, यह समझे बिना ध्यान किसका करेगा? समझ में आया? अनादि अनन्त सच्चिदानन्द स्वसत्ता से विराजमान पूर्णानन्द का नाथ केवलज्ञान सत्ता से भरपूर तत्त्व है। अकेला केवलज्ञान से भरा हुआ तत्त्व है। ऐसे भगवान आत्मा को, जिसमें अनन्त निर्मल गुण पड़े हैं, निर्मल गुण पड़े हैं! मलिनता का त्याग, निर्मल गुणों से भरे हुए भगवान का ध्यान उसकी पर्याय में कर - ऐसा कहते हैं।

अप्पा यह वस्तु है। **अप्पा** यह वस्तु है - निर्मल आत्मा। ध्यान कर, यह पर्याय है। क्या कहा? मोक्ष के सुख का उपाय, यह मोक्ष का मार्ग.... आत्मा अखण्डानन्द आनन्दकन्द ज्ञानमूर्ति, उसका ध्यान करना, वह मोक्ष का मार्ग है। ध्यान में दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों आ गये हैं। अपनी सत्ता शुद्ध सत्तावाला पदार्थ, अशुद्ध मलिनता का जहाँ त्याग (हुआ), वहाँ शुद्ध सत्ता का आदरना, उस शुद्ध सत्ता का आदर करना, ध्यान करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। अब इसमें व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है, इसका निषेध हो जाता है। अरे...! परन्तु शास्त्र में मोक्ष के मार्ग दो कहे हैं। मोक्ष का मार्ग दो - निश्चय और एक व्यवहार। अरे! चल... चल...! मोक्षमार्ग दो कैसे? मार्ग तो एक ही है। आत्मा का ध्यान करना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है।

भगवान आत्मा शुद्ध सहजानन्द की मूर्ति में सावधानपने श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति में उसे आश्रय बनाना, वह एक ही मुक्ति का मार्ग है। संवर, निर्जरा का मार्ग यह एक ही आत्मा की ओर का ध्यान, वह संवर निर्जरा का मार्ग है। समझ में आया? भाई! पाँच हाथ बाहर में नियम लिया, लो! परन्तु धूल में, नियम किस काम का तेरा? नियम, अन्दर में हाथ जोड़ कि पुण्य-पाप के दोनों विकल्प छोड़ने जैसे हैं; निर्विकल्प आत्मा का ध्यान आदरणीय है। उसने वास्तविक प्रत्याख्यान या पच्चक्खाण किया, बाकी तो अज्ञानरूप प्रत्याख्यान है। समझ में आया इसमें? देखो!

'अप्पा झायहि' बहुत संक्षिप्त में बात (की)। आत्मा, उसे पहचान। आत्मा अर्थात् पुण्य-पाप रहित, एक समय की पर्याय जितना नहीं... भगवान पूर्णानन्द प्रभु, जिसके अन्तर्मुख के अवलोकन से संसार की कहीं गन्ध नहीं रहती। ऐसे आत्मा का निर्मल.... वापस वह निर्मल.... निर्मल है न? उस मलिन पर्याय को छोड़ने का कहा। निर्मल आत्मा त्रिकाली का ध्यान कर। लो! यह मोक्ष का मार्ग। इसमें सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण और ये कब, कहाँ आयेंगे?

मुमुक्षु - ध्यान की पर्याय भी सामायिक है।

उत्तर - वह सामायिक है। आत्मा अखण्डानन्द प्रभु के सन्मुख देखकर एकाग्र होने का नाम सामायिक है, उसका नाम प्रौषध है, उसका नाम प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान है, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। आहा...हा...! समझ में आया?

'णिम्मलउ अप्पा झायहि' निर्मल आत्मा का ध्यान है.... भगवान विराजता है न! कहते हैं। पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि कर, उसका ज्ञान कर, और उसमें स्थिर हो – इन तीनों को यहाँ ध्यान में समाहित कर लिया है। यह मोक्षमार्ग – सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः यह शब्द तत्त्वार्थसूत्र का है। इन तीनों को यहाँ ध्यान में समाहित कर दिया है। आहा...हा...! और तीनों को आत्मा शुद्ध पवित्र, उसकी ओर का अवलोकन, श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति (हुए) उसे यहाँ ध्यान कहते हैं। उस निर्मल आत्मा का ध्यान ही मोक्ष का मार्ग अथवा मोक्षसुख का कारण है। वह पूर्ण सुख का कारण है। समझ में आया?

दूसरे प्रकार से कहें तो यहाँ जो वह शुभभाव आदि था न ? वह आत्मध्यान नहीं था, वह परध्यान था। समझ में आया ? साधु के अट्ठाईस मूलगुण वह परभाव, परध्यान है; वह आत्मध्यान नहीं। वह परध्यान था, परभाव का ध्यान था। अद्भुत बातें, भाई ! भगवान आत्मा, अपने शुद्ध निर्मल स्वभाव को अन्तर्मुखदृष्टि करके स्थिरता-ध्यान करे, एक ही आत्मा के पूर्ण आनन्दरूपी मोक्षसुख का यह एक ही उपाय है। देखो, इसमें दो मोक्षमार्ग हैं – ऐसा नहीं है। इस आत्मा का ध्यान, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ?

यह तो अभी आगे आयेगा। यहाँ तो पहले से सिद्ध करते जाते हैं।

'अप्पा झायहि णिम्मलउ जिम सिवसुक्ख लहेवि' देखो ! एक-दो पद में कारण और कार्य दो बताये। पहले में आत्मा शुद्ध भगवान पवित्र है, वह व्यवहार के विकल्प से भिन्न है, उसका ध्यान कर, इसे (परभाव को) छोड़। यहाँ ध्यान कर तो **'लहेवि'। 'जिम'** प्राप्त करे। क्या ? **'जिम'** अर्थात् **जिससे....** जिससे **'सिवसुक्ख लहेवि'** मोक्ष के सुख को तू **प्राप्त कर सके।** लो, यह आत्मा के पूर्ण आनन्द के सुख को प्राप्त कर सके। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहा...हा... ! इसमें भगवान की मूर्ति या पूजा या जात्रा-वात्रा तो कहीं आयी नहीं, हाँ ! इसमें। यह परभाव शुभ हो, उसका लक्ष्य छोड़, यहाँ ध्यान कर। इतना मोक्ष का कारण है।

मुमुक्षु – ठीक है।

उत्तर – क्या ठीक है ? परन्तु अभी तुम्हें मन्दिर बनाना है न ठीक ? अभी से होश उड़ जायेंगे।

मुमुक्षु – वह तुम्हारे लिये नहीं।

उत्तर – दो के मार्ग अलग होंगे ? यह तो हमारे कहे न, होश उड़ जाये, होश उड़ जाये। होश उड़ जाता है, क्या करना ? उसे यथार्थ तत्त्व की दृष्टि होवे कि ओ...हो... ! हम यह कर नहीं सकते, होने के काल में होता है। विकल्प, राग आता है, वह भी मेरे वहाँ एकाग्र रहनेयोग्य नहीं है – ऐसा होता है। आहा...हा... ! तब वे कहते हैं, बात अच्छी करते हैं परन्तु फिर लाखों के मन्दिर बनाते हैं। परन्तु कौन बनाता है ? सुन तो सही। वापस गाँव

-गाँव में मन्दिर.... बाँकानेर, मोरबी, राजकोट, और गोंडल, जैतपुर, पोरबन्दर, हैं ? इनकी ओर के बहुत अधिक रह गये, लाठी, बिछिया, बोटाद, लींबड़ी, बढ़वाण, कांप, जोरावरनगर, चारों ओर मन्दिर-मन्दिर।

भाई! तुझे पता नहीं, प्रभु! उस समय वे पर्याय वहाँ होने के काल में होती है। जिसे उनका प्रेम होता है, उस शुभभाव को निमित्त कहते हैं। ऐसा भाव – व्यवहार आये बिना नहीं रहता परन्तु वह व्यवहार बन्ध का कारण है – ऐसा इसे जानना चाहिए। कहो, समझ में आया ? बाबूभाई! यह ९९ वें यात्रा से मोक्ष हो वह हराम है, यहाँ इनकार करते हैं। यह सब वहाँ मन्दिर बनाने में पड़नेवाले हैं। यह भी यहाँ से जानेवाले हैं, हैं ?

कर्ता कहाँ है ? कर्ता ही नहीं, यहाँ तो विवाद ही यह है, करे कौन ? वहाँ रजकणों की अवस्था होने के काल में होती है, उसे करे कौन ? यह तो यहाँ लगी है। सवा तीन-तीन वर्ष होने आये तो भी तुम्हारा चलता नहीं। करना हो तो हो, तो अभी तक क्यों नहीं हुआ ? यहाँ तो कहते हैं कि किस संयोग में वहाँ आगे जो रजकण की रचना होने के काल में हुए बिना रहनेवाली नहीं है, उसमें आत्मा के शुभपरिणाम का अधिकार नहीं है कि शुभ परिणाम किया इसलिए हुआ और शुभपरिणाम हुए इसलिए यहाँ आत्मा में एकाग्रता होगी – ऐसा भी नहीं है। शुभ हुए, इसलिए वहाँ हुआ ऐसा नहीं और शुभ हुआ, इसलिए आत्मा की तरफ जाया जाता है – ऐसा भी नहीं है। अरे...! आहा...हा...! यह मार्ग वीतराग का है। आहा...हा...! कहो, प्रवीणभाई! शुभभाव किये, इसलिए हुआ – ऐसा भी नहीं और शुभभाव हुआ, इसलिए आत्मा में अन्तर में एकाग्र होना सरल पड़ेगा (– ऐसा भी नहीं)। ए... मोहनभाई! इन्होंने तो कराया है न पहले, अब कहाँ हैं इन्हें। ये बहुत सब कहते हैं, हाँ! कि बात तो बहुत ऊँची करते हैं, सत्य लगती है परन्तु फिर यह पूजा, भक्ति और लप तो बड़े-बड़े गाँव-गाँव में बढ़ाते जाते हैं। ऐ...ई...! चिमनभाई! परन्तु बापू! तुझे पता नहीं है। कौन बढ़ाये ? यह तो उसके काल में होता है; किसी के करने से नहीं होता ?

यहाँ तो बहुत वर्ष पहले मन्दिर बनाने का भाव था, लो! पहले जब (संवत) १९९५ में गये न! तब से बात थी। एक स्फटिक की मूर्ति लाओ। कहाँ ? घोघा में थी। कहाँ

गये शान्तिभाई! सो गये होंगे। समझ में आया? स्फटिक की मूर्ति घोघा में है, उसे यहाँ लाकर रखना। ऐसी बातें चलती थी, हम सुनते थे। न आया तो नहीं हुआ, न हो तो क्या? यह (संवत) १९९७ में होने का था, वह हुआ। भाई! यह बातें ऐसी हैं। पर के कार्य आत्मा करे, वह तो बहिरात्मा पर को (और) अपने को दोनों को एक मानता है। भिन्न मानने की उसकी योग्यता नहीं है, वहाँ तक चार गति के भय से छुटकारा नहीं है। आहा...हा...!

'जिम सिवसुक्ख लहेवि' देखो मोक्ष के सुख को पाता है – एक बात। चार गति में सुख नहीं है – ऐसा सिद्ध किया। मोक्ष के सुख को पाता है। शिव अर्थात् मोक्ष! शिव अर्थात् शंकर का सुख – ऐसा नहीं। शिवसुख नहीं आता? नमोत्थुणम में शब्द में शिव लयो शिव अर्थात् निरूपद्रव। उपद्रवरहित आत्मा के आनन्द की (प्राप्ति)। नमोत्थुणम में आता है परन्तु अर्थ कहाँ से आता होगा? 'सिवमलयमरुयमणंतमरुमक्खयमव्बाहमपुणरवित्ति' आता है न? किसे पता एक भी शब्द का? पहाड़े बोलते जाते हैं।

यहाँ भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ योगीन्दुदेव कहते हैं। आत्मा क्या है? – उसे पहले जानना और फिर उसका ध्यान करना अर्थात् दृष्टि का पलटा मारना। ऐसी (बहिर्मुख) दृष्टि है, (उसे) ऐसी (अन्तर्मुख) करना। उससे – ध्यान से शिवसुख प्राप्त करेगा। इसके अतिरिक्त मोक्ष के सुख की प्राप्ति का दूसरा उपाय वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में नहीं है। अन्यत्र तो है नहीं। पाँचवीं (गाथा पूरी) हुई।

☆ ★ ☆

आत्मा के तीन प्रकार

ति-पयारो अप्पा मुणहि, परु अंतरु बहिरप्पु।
पर झायहि अंतर-सहिउ, बाहिरु चयहि णिभंतु॥६॥

विविध आत्मा को जानके, तज बहिरातम रूप।
अन्तर आतम होय के, भज परमात्म स्वरूप॥

अन्वयार्थ – (अप्पा तिपयारो मुणहि) आत्मा के तीन प्रकार जानो, **(परू)** परमात्मा **(अंतरू)** अन्तरात्मा **(बहिरप्पु)** बहिरात्मा **(णिभंतु)** भ्रान्ति या शङ्का रहित

होकर **(बाहिरूचर्याहे)** बहिरात्मापना छोड़ दे **(अंतरसहिउ)** अन्तरात्मा होकर **(परिझायहि)** परमात्मा का ध्यान कर।

☆ ★ ☆

छठवीं। अब तीन प्रकार के आत्मा (कहते हैं)। आत्मा.... आत्मा... करते हैं न? परन्तु आत्मा की पर्याय के तीन प्रकार हैं। पर्याय के, हाँ! समझ में आया? अकेला सब आत्मा अनादि निर्मल ही है – ऐसा कहते हैं वह मिथ्या; अकेला मलिन ही है – ऐसा कहते हैं वह मिथ्या। यह तीन प्रकार के आत्मा... समझ में आया? **आत्मा के तीन प्रकार –**

ति-पयारो अप्पा मुणहि, परु अंतरु बहिरप्पु।
पर झायहि अंतर-सहिउ, बाहिरु चयहि णिभंतु॥६॥

आत्मा को तीन प्रकार जानो। आत्मा की पर्याय – अवस्था से, हाँ! अवस्था से। द्रव्यरूप से तो त्रिकाल एकरूप है। पर्याय में-अवस्था में-हालत में भूल, भूल का मिटना और निर्भूल की पूर्णता की प्राप्ति सब पर्याय में है। क्या कहा यह? बहिरात्मपना भी उसकी पर्याय में है। राग, पुण्य को अपना मानना, वह उसकी पर्याय में है। अन्तर आत्मपना – आत्मा शुद्ध है – ऐसा मानना उसकी पर्याय में है और पूर्ण परमात्मारूप परिणमित होना, वह भी उसकी पर्याय में है।

आत्मा को तीन प्रकार जानो। परमात्मा.... पहले यह लिया। उत्कृष्ट परमात्मदशा। शक्तिरूप से परमात्मा तो प्रत्येक आत्मा है। क्या कहा? जो परमात्मा की पर्याय प्रगट होनी है, सादि-अनन्त.... वह सब शक्तियाँ वर्तमान अन्तरात्मा में पड़ी हैं। वर्तमान शक्ति पड़ी है परन्तु प्रगट पर्याय की अपेक्षा यहाँ परमात्मा की बात करते हैं। समझ में आया? अप्रगटरूप से – शक्तिरूप से तो प्रत्येक आत्मा में जितनी परमात्मा की पर्याय प्रगट होनी है, वह सब अप्रगटरूप से – शक्तिरूप से अन्दर आत्मा में अभी पड़ी है। समझ में आया? परन्तु प्रगट पर्याय की अपेक्षा से परमात्मा होवे, उसे यहाँ परमात्मा गिना गया है। आहा...हा...!

अन्तरात्मा.... दूसरा अन्तरात्मा परमपूर्ण हो गया। अन्दर वस्तु जो परमात्मशक्ति है और इस अन्तरात्मा की सभी पर्यायें ये भी सब शक्तियाँ अन्दर है और बहिरात्मा की समस्त पर्यायों की भी शक्तियाँ अन्दर पड़ी हैं। सब पड़ी है, एक समय में सब पड़ी है। उसमें इसने आत्मा राग से, पुण्य से भिन्न निर्विकल्प शुद्ध परमात्मा का स्वरूप उसे पर्याय में प्रगट नहीं हुआ परन्तु वस्तु से ऐसा है। ऐसा जिसने श्रद्धा-ज्ञान से ध्यान करके निर्णय किया है, उसे वर्तमान दशा की निर्मलता के, अपूर्ण निर्मलता की अपेक्षा उसे अन्तरात्मा कहा जाता है। समझ में आया?

बहिरप्पु, बहिरप्पु यह बाहर में आत्मा माननेवाला। अन्तर में भले परमात्म शक्ति, अन्तरात्म शक्ति, बहिरात्म शक्ति सब पड़ी है। समझ में आया? परन्तु जो वर्तमान अवस्था में बाहर, बाहर.... भगवान पूर्ण शुद्ध निर्मलानन्द है, उसके अतिरिक्त के दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, देहादि की क्रिया को अपनी माननेवाला, उसमें से हित माननेवाला.... जिससे हित माने उसे भिन्न नहीं मान सकता, उसे बहिरात्मा कहा जाता है।

यहाँ ऐसा नहीं कहा कि इतनी क्रिया नहीं करता, इसलिए वह अन्तरात्मा है.... बाहर की, और इतनी क्रिया अन्दर राग की करता है, इसलिए बहिरात्मा है। यह रागादि की क्रिया दया, दान, व्रत के परिणाम जो आस्रवतत्त्व है, वह बहिर तत्त्व है, उसे आत्मा का हित (करनेवाला है – ऐसा) माननेवाला बहिरात्मा है। समझ में आया?

बहिरप्पु, बहिरात्मा.... अथवा किसी भी कर्मजन्य उपाधि के संसर्ग में आकर कहीं भी उल्लसित वीर्य से, उल्लसित वीर्य से उत्साह करना, वह बहिरात्मा है। क्या कहा? भगवान आत्मा को आनन्दमूर्ति के उल्लसित वीर्य का आदर छोड़कर, बाहर की किसी भी कर्मजन्य उपाधिभाव या संयोग किसी भी संसर्ग में आने पर उसमें उल्लसितरूप से अन्दर वीर्य उल्लसित हो जाये... यह...! आहा...हा...! ऐसे पर में विस्मयता हो उसे बहिरात्मा कहा जाता है। समझ में आया? आहा...हा...! अन्तर के आनन्द से प्रसन्न न हुआ; वह तो बाहर के शुभाशुभभाव और उसके फल, उसके संयोग जो बाह्य, आत्मा के स्वभाव से बाहर वर्तते हैं, बाहर में प्रसन्न हुआ, उन्हें ही आत्मापना माना, उसे बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि कहते हैं। आहा...हा...!

छह खण्ड का राजा, छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा हुआ, उसे अन्तर में बाह्य त्याग न दिखने पर भी, अन्तर में राग का विवेक और राग का त्याग वर्तता है। राग का विवेक अर्थात् भिन्न और आत्मा की एकता में उसका त्याग वर्तता है। बहिरात्मा को बाह्य त्याग नग्न दिगम्बर (हुआ हो), महा अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, चमड़ी उतार कर नमक छिड़कने पर भी क्रोध न करे, अन्तर में उसे राग का अत्याग और राग के साथ एकत्वबुद्धि पड़ी है, वह बहिरात्मा, बाह्य बुद्धि में प्रसन्न होनेवाला है। समझ में आया? आहा...हा...!

शरीर की निरोगता मुझे साधन होगी... शरीर की निरोगता मेरे आत्मा को साधन होगी, रोग के समय मुझे प्रतिकूलता थी, अब शरीर में कुछ निरोगता हुई, कुछ पैसे इत्यादि की व्यवस्था हुई, अब मैं निर्विघ्न धर्मध्यान कर सकूँगा। अब क्या है? परन्तु लड़के -बड़के ठिकाने लगे हों तो बढ़िया रहे, लो! नहीं (तो) वहाँ उनके पास जाना पड़ेगा। आहा...हा...! आत्मा के अतिरिक्त रजकण से लेकर सभी प्रकार की बाह्य रिद्धियाँ, कहीं उनमें अनुकूलता मान ली जाये और प्रतिकूलता के संसर्ग में कहीं उसके कारण अरुचि हो, उसे बुद्धि बहिरात्म है। बाहर में रुकी हुई बुद्धि है। आहा...हा...! यह तो स्वयं आचार्य कहेंगे आगे, हाँ! यहाँ तो अभी साधारण बात करते हैं।

भ्रान्ति अथवा शंकारहित होकर.... अब तीन में से भ्रान्ति और शंकारहित होकर **बहिरात्मपना छोड़ दे....** इन शुभाशुभभाव से लेकर पूरे जगत की सामग्री, इस अनुकूल -प्रतिकूलता में उल्लसित वीर्य को छोड़ दे। आहा...हा...! इस हर्ष के भाव में चढ़ा हुआ तेरा भाव वह बहिरात्मा है, कहते हैं। प्रतिकूल सामग्री में खेद में चढ़ा हुआ तेरा भाव भी बहिरात्मा है। समझ में आया?

भ्रान्ति अथवा शंकारहित होकर बहिरात्मपना छोड़ दे, अन्तरात्मा होकर.... भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप है – ऐसी दशा को प्राप्त करके, अन्तरात्मा की दशा को बहिरात्मा की श्रद्धा-ज्ञान से त्याग करके, श्रद्धा-ज्ञान में बहिरात्मा बुद्धि का त्याग करके, श्रद्धा-ज्ञान में अन्तरात्मा को ग्रहण करके परमात्मा का ध्यान कर। अन्तरात्मा का ध्यान करने का नहीं रहा फिर। समझ में आया?

(मुमुक्षु : प्रमाण वचन गुरुदेव)